Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
October to December 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLVIII, ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

भारतीय राजनीतिक चिंतन में विरोध और शासक पर नियंत्रण : परंपरा, विमर्श और समकालीन प्रासंगिकता

डॉ. शोभा गौतम*

* सह आचार्य (राजनीति विज्ञान) से. मु .मा .राजकीय कन्या महाविद्यालय, भीलवाड़ा (राज.) भारत

शोध सारांश – प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में राजतंत्र की मान्यता को सहमति दिखाई देती है ।भारतीय राजनीतिक चिंतन राजतंत्र को सर्वश्रेष्ठ शासन मानते हुए भी जनता के कल्याण को प्राथमिकता देने के प्रति उदासीन नहीं रहा है, प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन चाहे वह मनुस्मृति हो, कौटिल्य का अर्थशास्त्र या शुक्र का शुक्र नीतिसार सभी में राजतंत्र की प्रधानता होते हुए भी राजतंत्र को धर्म और नीति के अधीन रखा गया है ।प्रस्तुत शोध पत्र में प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में विरोध और शासन पर नियंत्रण की अवधारणा का समसामयिक परिपेक्ष में विश्लेषण किया गया है।
शब्द कुंजी – राजतंत्र,मनुस्मृति, अर्थशास्त्र, विरोध।

प्रस्तावना – मानव सभ्यता का इतिहास इस बात का साक्षी है कि सत्ता और प्रजा का संबंध केवल आदेश और आज्ञापालन तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें नियंत्रण, संतुलन और विरोध की निरंतर धारा विद्यमान रहती है। राजनीति की यह विशेषता है कि जब शासक निरंकुश हो जाता है और राज्यादेश न्याय, धर्म या नैतिकता से विचलित होता है, तब प्रजा का विरोध एक नैतिक व राजनीतिक आवश्यकता बन जाता है। विरोध को दो स्तरों पर समझा जा सकता है– पहला वैचारिक असहमति (Dissent) और दूसरा व्यावहारिक अवज्ञा (Disobedience)। जब तक नागरिक केवल असहमति व्यक्त करता है, वह वैचारिक विरोध है। किंतु जब वह राज्य के आदेश का पालन न करते हुए उसका उल्लंघन करता है, तब यह विरोध व्यावहारिक और राजनीतिक स्वरूप ग्रहण कर लेता है।

शोध पत्र के उद्देश्य – प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में उपस्थित विरोध एवं शासक पर नियंत्रण की अवधारणा का समसामयिक परिप्रेक्ष्य मे विश्लेषण करना।

शोध पत्र की परिकल्पना – प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में राजतंत्र की असीमित शक्तियां होते हुए भी राजतंत्र को निरंकुश नहीं बनाया गया है।

शोध प्रविधि – शोध कार्य हेतु ऐतिहासिक, विवरणात्मक, विश्लेषणात्मक, एवं तुलनात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है। शोध कार्य हेतु तथ्यों एवं आंकड़ों के संकलन हेतु द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है। द्वितीयक स्त्रोतों के रूप में पुस्तकों एव पत्र– पत्रिकाओं का उपयोग किया गया है।

भारतीय चिंतन में विरोध की परंपरा – जनता द्वारा किसी भी शासन व्यवस्था के प्रति विरोध को दो स्तरों पर समझा जा सकता हैकृपहला वैचारिक असहमति (Dissent) और दूसरा व्यावहारिक अवज्ञा (Disobedience)। जब तक नागरिक केवल असहमति व्यक्त करता है, वह वैचारिक विरोध है। किंतु जब वह राज्य के आदेश का पालन न करते हुए उसका उल्लंघन करता है, तब यह विरोध व्यावहारिक और राजनीतिक स्वरूप ग्रहण कर लेता है।सोक्रेटीज ने एथेंस नगर के अन्यायपूर्ण आदेशों को चुनौती तो दी, किंतु दंड स्वीकार करके यह दिखाया कि राज्य की व्यवस्था का सम्मान भी आवश्यक है (Plato,trans 2002)। वहीं हेनरी डेविड थोरो ने अपनी पुस्तक Civil Disobedience (1849) में यह प्रतिपादित किया कि अन्यायपूर्ण शासन का उल्लंघन करना नागरिक का नैतिक कर्तव्य है। थोरो ने कर देने से इंकार कर जेल जाना स्वीकार किया, क्योंकि वह अमेरिका की गुलामी समर्थक नीति के विरोध में खड़े थे (Thoreau, 1849/1993)। इस विचारधारा ने आगे चलकर गांधीजी और मार्टिन लूथर किंग जूनियर को गहरे प्रभावित किया (King, 1963/1991)।

विरोध की अवधारणा को समझने के लिए इसे समानांतर अवधारणाओं से तुलना करना आवश्यक है।

- **सिविल डिसओबीडियंस –** यह विरोध का सबसे समीपवर्ती रूप है, जिसमें नागरिक कानून तोड़ता है परंतु अहिंसा और नैतिकता को साधन बनाता है। गांधीजी का नमक सत्याग्रह इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है (Gandhi, 1909/1998)।
- **असहमति (Dissent) –** यह विचारों और अभिव्यक्ति तक सीमित है, जबकि विरोध आदेश के उल्लंघन तक जाता है।
- **क्रांति (Revolution) –** विरोध का उग्र रूप, जिसमें राज्य की संपूर्ण व्यवस्था को ही पलट देना लक्ष्य होता है। फ्रांसीसी और रूसी क्रांतियाँ इसके उदाहरण हैं। भारतीय संदर्भ में भगत सिंह और चंद्रशेखर आजाद की गतिविधियाँ इसी श्रेणी में रखी जा सकती हैं (Chandra, 1989)।
- **नॉन–वायलेंट रेजिस्टेंस –** मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने गांधीवादी तरीकों को अपनाकर अमेरिकी नागरिक अधिकार आंदोलन में इसका उपयोग किया। यह भी आदेश के उल्लंघन का ही अहिंसक रूप है (King, 1963/1991)।

भारतीय चिंतन में विरोध की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। वैदिक युग में जहाँ वेदों को सर्वोच्च प्रमाण माना गया, वहीं चार्वाक दर्शन ने प्रत्यक्षवाद

का प्रतिपादन करके वेद की सत्ता का ही खंडन किया। यह वैचारिक विरोध सामाजिक और धार्मिक सत्ता के आदेश का प्रत्यक्ष उल्लंघन था। बौद्ध और जैन आंदोलनों ने पशुबलि और हिंसा पर आधारित यज्ञ-प्रथा को अस्वीकार किया तथा नए नैतिक आदेश स्थापित किए। यह उस समय की राज्य-स्वीकृत व्यवस्था के विरोध के रूप में देखा जा सकता है (Ambedkar, 1936/2014)।

भारतीय चिंतन में शासक पर नियंत्रण की परंपरा- भारतीय राजनीतिक चिंतन की विशेषता यह है कि यहाँ शासक और प्रजा के संबंध केवल विधिक नियमों तक सीमित नहीं रहे, बल्कि वे धर्म, संस्कृति और लोकजीवन की परंपराओं से भी बँधे रहे। इसीलिए भारतीय चिंतन में शासक पर नियंत्रण और अन्यायपूर्ण आदेशों का उल्लंघन, दोनों ही विमर्श के मुख्य अंग रहे हैं।

प्राचीन भारतीय परंपरा में शासक को धर्मपालक और लोककल्याणकारी संरक्षक माना गया। मनुस्मृति में यह स्पष्ट कहा गया है कि राजा यदि धर्म से विचलित हो, तो उसका राज्य अधिक समय तक स्थिर नहीं रह सकता हैं। कौटिल्य का अर्थशास्त्र भी इसी दिशा में शासक की शक्तियों को कठोर अनुशासन में बाँधता है। कौटिल्य के अनुसार राजा प्रजा के सुख और सुरक्षा का रक्षक है और यदि वह अपने दायित्वों का निर्वाह नहीं करता तो उसका शासन नैतिक और राजनीतिक वैधता खो देता हैं।

महाभारत में विदुर नीति यह उद्घोष करती है कि अधर्म को सहना स्वयं अधर्म है। यह दृष्टिकोण केवल धार्मिक नहीं, बल्कि राजनीतिक भी है। यहाँ प्रजा को यह अधिकार और कर्तव्य दोनों दिए गए कि वह अधर्मपूर्ण आदेशों के सामने मौन न रहे। यही विचार बौद्ध और जैन आंदोलनों में और प्रखर हुआ। बुद्ध और महावीर ने हिंसक यज्ञ-प्रथाओं और असमानता का विरोध किया तथा करुणा और समता पर आधारित नए सामाजिक-राजनीतिक आदेश की स्थापना की। अशोक का धम्म शासन इसी नैतिक परंपरा का राजनीतिक रूपांतरण था, जहाँ शासक ने स्वयं को धर्म का प्रतिनिधि बनाकर लोककल्याणकारी नीतियों को अपनाया।

मध्यकालीन संत परंपरा में विरोध ने नया स्वरूप ग्रहण किया। कबीर, गुरु नानक और दादू जैसे संतों ने धार्मिक पाखंड और जातिगत विभाजन के विरुद्ध आवाज उठाई। उनका यह प्रतिरोध सीधे राजसत्ता को चुनौती नहीं देता था, किंतु वह सामाजिक व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न लगाकर अप्रत्यक्ष रूप से शासक के अधिकार को सीमित करता थीं। यह विरोध इस बात का प्रमाण था कि भारतीय समाज में असहमति और प्रतिरोध की परंपरा कभी समाप्त नहीं हुई।

आधुनिक भारत में यह विमर्श स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान चरम पर पहुँचा। महात्मा गांधी ने हेनरी डेविड थोरो के 'सिविल डिसओबीडियंस' के विचारों से प्रेरणा लेकर सत्याग्रह और असहयोग आंदोलन को जन्म दिया। थोरो का यह कथन कि अन्यायपूर्ण कानून का पालन करना ही पाप है, गांधीजी को गहराई से प्रभावित करता हैं। नमक सत्याग्रह इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है, जब उन्होंने ब्रिटिश शासन के कानून को तोड़ते हुए यह दिखाया कि प्रजा अन्यायपूर्ण आदेशों को मानने के लिए बाध्य नहीं है।

डॉ. भीमराव अंबेडकर ने सामाजिक आदेशों का उल्लंघन कर जातिगत भेदभाव और अस्पृश्यता के विरुद्ध महाड़ तालाब सत्याग्रह कियु। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि यदि कोई परंपरा शोषणकारी है, तो उसका प्रतिरोध करना ही न्याय है। दूसरी ओर, भगत सिंह और उनके साथियों ने क्रांतिकारी मार्ग अपनाकर औपनिवेशिक सत्ता को सीधी चुनौती दी। उनका यह दृष्टिकोण बताता है कि भारतीय विरोध परंपरा में अहिंसक और हिंसक दोनों ही मार्ग समानांतर मौजूद रहे हैं, जिनका अंतिम लक्ष्य अन्यायपूर्ण सत्ता का प्रतिरोध था।

स्वतंत्र भारत में यह परंपरा संवैधानिक रूप से स्थापित हुई। संविधान का अनुच्छेद 19 नागरिकों को अभिव्यक्ति और शांतिपूर्ण सभा का अधिकार देता है। यह अधिकार न केवल लोकतंत्र की आत्मा है बल्कि शासक पर नियंत्रण का भी औजार है। संसद में विपक्ष इसी विचारधारा का संवैधानिक रूप है, जिसका कार्य है शासन को उत्तरदायी बनाना और प्रजा की आवाज को अभिव्यक्त करना। आपातकाल (1975-77) इसका सबसे बड़ा उदाहरण है जब शासन ने नागरिक स्वतंत्रताओं को सीमित किया और परिणामस्वरूप व्यापक विरोध आंदोलनों ने सत्ता को पुन: संतुलन में लाने का कार्य किया। जयप्रकाश नारायण के सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन ने यह सिद्ध किया कि भारतीय लोकतंत्र में विरोध केवल अधिकार नहीं बल्कि सामाजिक-राजनीतिक आवश्यकता भी हैं।

इस प्रकार प्राचीन से आधुनिक काल तक यह स्पष्ट होता है कि भारतीय राजनीतिक चिंतन में विरोध और शासक पर नियंत्रण की अवधारणाएँ सदैव जीवित रही हैं। मनुस्मृति और कौटिल्य से लेकर गांधी और अंबेडकर तक, हर युग में यह बात कही गई कि शासक यदि अन्यायपूर्ण हो जाए तो उसके आदेशों का उल्लंघन ही नैतिकता है। यह विरोध कभी वैचारिक रूप में, कभी धार्मिक आंदोलनों के रूप में और कभी राजनीतिक क्रांतियों के रूप में प्रकट हुआ।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि विरोध और शासक पर नियंत्रण भारतीय राजनीतिक चिंतन की मूल आत्मा है। ये दोनों अवधारणाएँ सत्ता को निरंकुश होने से रोकती हैं और समाज को न्याय और नैतिकता की ओर अग्रसर करती हैं। आधुनिक लोकतंत्र में भी यह परंपरा उतनी ही प्रासंगिक है जितनी प्राचीन काल में थी। जब भी सत्ता न्याय और धर्म से विचलित होगी, तब यह परंपरा उसे संतुलित करने और प्रजा को सशक्त बनाने का कार्य करती रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. मनुस्मृति, अध्याय 7।
2. कौटिल्य, अर्थशास्त्र।
3. महाभारत, विदुर नीति।
4. थापर, रोमिला (2015). अशोक और धम्म. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. द्विवेदी, हजारीप्रसाद (2002). कबीर. राजकमल प्रकाशन।
6. Thoreau, H. D. (1849). Civil Disobedience. Boston.
7. अंबेडकर, भीमराव (2014). जातिभेद का उन्मूलन. नवयाना।
8. चंद्र, बिपिन (1989). भारत का स्वतंत्रता संग्राम. पेंगुइन।
9. लोहिया, राममनोहर (1963). व्हील ऑफ हिस्ट्री. नव हिन्द।
10. Guha, Ramachandra (2007). India After Gandhi. Picador.

****